Global Journal of Multidisciplinary Studies Available online at www.gjms.co.in
Volume 2, Issue2, January 2014
ISSN: - 2348-0459

एक विकासात्मक यंत्रा के रूप में भारत की लोक नीति

(Public Policy on a Developmental Instrument in India)

धर्मेन्द्र कुमार नीरज

शोधार्थी राजनीति विभाग दिल्ली वि वि नई दिल्ली

संक्षिप्त

नीति निर्माण सरकार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रियाओं में से एक है। इसे लोक प्रशासन का केन्द्रीय तत्व माना जाता है, क्योंकि लोक नीति निर्माण प्रक्रिया में सरकार के तीनों अंगो–कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका। किसी न किसी रूप में संबंधित होते हैं। दरअसल नीति वह माध्यम या साध्न है जिसके सहारे लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। किसी भी राष्ट्र के सामने आंतरिक एवं बा”य कई तरह की समस्याएँ होतीं है। इन समस्याओं से निबटने के लिए उन समस्याग्रस्त क्षेत्राों से संबंधित नीतियाँ बनानी पड़ती हैं। नीतियों के अभाव में न तो वर्तमान समस्याओं से निबटा जा सकता है और न ही भावी संकट को चिर्ग्नि कर उसका समाधन किया जा सकता है और न ही भावी संकट को चिर्ग्नि कर उसका समाधन किया जा सकता है। नीतियों का अभाव अंततः अराजकता को ही आमंजित करता है।नीतियाँ ऐसा प्रमाणिक मार्गदर्शक है जो प्रबन्ध्कों को योजना बनाने, कानूनी आवश्यकताओं के अनुकूल कार्य करने तथा निर्धरित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देतीं है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि नीति ही एक ऐसे ढाँचे का निर्धरण करती है जिसके भीतर संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। प्रत्येक संगठन में कार्रवाई करने के पहले नीति निर्माण आवश्यक है। नीति निर्माण की प्रक्रिया शासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है। अंत में, नीतियाँ उद्देश्यों को निश्चित अर्थ प्रदान करती है। किसी भी संगठन के उद्देश्य प्रायः सामान्य भाषा में लिखे रहते है, नीतियाँ इन्हीं उद्देश्यों को मूर्तरूप प्रदान करती है।

खोज शब्द अराजकता , न्यायपालिका मूर्तरूप

लोक नीति की परिभाषा :–

लोक नीति वस्तुतः सामाजिक विज्ञान की नई शाखा है और यह नीति विज्ञान कहलाता है जिसकी अवधरणा **हरोल्ड लासवेल** द्वारा 1957 ई. में दिया गया था।

लोक नीति को सही अर्थ जानने के लिए पहले लोक नीति का राजनीतिक, नियम, रीति–रिवाज, लक्ष्य, निर्णय तथा प्रशासन के साथ क्या अंतर है, जानना जरूरी है। लोक नीति प्रायः हमारे दैनिक जीवन में और शैक्षिक साहित्य में प्रयोग किया गया शब्द है जहाँ हम बहुध राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, शिक्षा नीति, श्रम नीति, कृषि नीति, विदेश नीति का उल्लेख करते है। यह ऐसा क्षेत्रा है, जिसे उन क्षेत्राों में कार्य करना होता है जिन्हे सार्वजनिक वर्गीकृत किया गया है। लोक नीति की अवधरणा पहले से ही यह स्वीकारती है कि जीवन का प्रभाव क्षेत्रा निजी या पूर्णतः व्यक्तिगत नहीं है परन्तु उमयनिष्ठ है।

‘नीति’ शब्द को कभी–कभी नियम, प्रथा, प्रक्रिया और योजना आदि जैसे शब्दों का समानार्थक समझ लिया जाता है जबकि नीति और इन शब्दों में मूलभूत अंतर है। नीति गतिशील और लचीली होती है। जरूरत को देखते हुए नीति में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है, जबकि नियम अपेक्षाकृत जटिल एवं कठोर होते हैं। नीतियाँ सामान्यतः नियमों की अपेक्षा विस्तृत होती है। एक व्यापक नीति के तहत ही नियम कानून बनाए जाते हैं। नियम, नीति के अंतर्गत मूलतः मार्गदर्शक की तरह होते हैं जो करने और न करने योग्य कार्यों में अंतर करते हैं।

Global Journal of Multidisciplinary Studies Available online at www.gjms.co.in
Volume 2, Issue2, January 2014
ISSN: - 2348-0459

लोक नीति को समझने के लिए निम्नलिखित बातें अत्यंत महत्वपूर्ण है–

1. लोकनीति प्रधनतः सरकारी क्षेत्रा से संबं(है। गैर सरकारी क्षेत्रा इससे प्रभावित हो सकते हैं और इसे प्रभावित भी कर सकते हैं।

2. नीतियाँ मूलतः मार्गदर्शक है जो योजना बनाने, संविधन के अनुरूप कार्य करने तथा वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है।

3. नीतियाँ अपने स्वरूप में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकती है।

4. लोक नीतियाँ लक्ष्योंन्मुख होती है। इनका निर्माण और क्रियान्वयन जन सामान्य के हित के लिए सरकार के विचाराधीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है।

5. लोक नीति वह है जो सकरार वास्तव में करती है न कि वह क्या करना चाहती है।

6. लोक नीति वैधनिक है इसलिए वह बाध्यकारी होती है।

<u>लोक नीति एवं राज्य</u>ः–

एक नीति विभिन्न प्रकार की हो सकती है जैसे–सामान्य या विशेष, विशाल या संकरी, सरल या जटिल, सार्वजनिक या निजी, लिखित या मौलिक, स्पष्ट या अस्पष्ट, संक्षिप्त या विवरणात्मक और गुणात्मक या मात्राात्मक हो सकती है। यहाँ पर लोक नीति की इस बात पर बल देता है कि सरकार कार्यवाही के लिए किस नीति का मार्गदर्शन के लिए चयन करती है।

लोकनीति की दृष्टि से सरकार के कार्य को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है–

1. वे कार्यकलाप जो निश्चित नीतियों से संबं(है

2. वे कार्यकलाप जो स्वरूप में साधरण है एवं

3. वे कार्यकलाप जो अस्पष्ट और संदिग्ध नीतियों पर आधरित है जैसे–भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों के माध्यम से संविधन के उन कुछ अनुच्छेदों की नई व्याख्या की है जो नई नीति के आधर बन सकते हैं।

लोक नीति में राज्य के कार्यकलाप के वे प्रमुख भाग हो सकते हैं, जो देश की विकास नीति के अनुकूल होते है। सामाजिक–आर्थिक विकास, समानता, स्वतंत्राता, आत्मनिर्भरता या कार्यवाही के लिए मार्गदर्शन के समान व्यापक सि(ांतों को विकास संबंधी नीति या लक्ष्यों के आधरभूत संरचना के रूप में अपनाया जा सकता है। लोक नीति सीमित हो सकती है, जैसे बाल श्रम का निवारण या व्यापक हो सकती है जैसे महिलाओं का सशक्तिकरण। लोक नीति देश के सीमित वर्ग अथवा उसके सभी लोगों पर लागू हो सकती है।

राज्य का वर्तमान स्वरूप कापफी भिन्न है जो 1945 ई. से लगभग दो शताब्दियों पूर्व दिखाई देता है 1945 ई. के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन होने प्रारंभ हुए, जिसने विकास के स्वरूप को ही बदल दिया और उसके उद्देश्यों को बहुत जटिल बना दिया। द्वितीय विश्व यु(के बाद पूर्व उपनिवेशों की स्वतंत्राता पराधीनता से स्वाधीनता सबसे अध्कि महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। यह एशिया में अध्किांश विकासशील देशों में सही है। विकासशील देश राज्य नियंत्रित आर्थिक विकास में दृढ़ विकास के साथ उपनिवेशी अवध् िसे बाहर आए। राज्य संसाध्नों और लोगों को गतिशील करने और आर्थिक वृ(को बढ़ाने तथा गरीबी और सामाजिक अन्याय का उन्मूलन करने के लिए नीति बनाए।

सोवियत संघ के विघटन ने राज्य सक्रियवाद पर आधरित केन्द्रीय योजना मॉडल को हिला दिया। अचानक राज्य स्वामित्व की कम्पनियों की असपफलता सहित सरकार की विपफलता का अनुभव स्पष्ट प्रमाण के रूप में सर्वत्रा प्रकट हुआ। सरकार ने अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप का क्षेत्रा कम करने के लिए तैयार की गई नीतियों को अपनाना प्रारंभ किया। राज्य ने उत्पादन, कीमतों और व्यापार में अपनी सहभागिता घटा दी। बाजार की मैत्राीपूर्ण कार्यनीतियों ने विकासशील विश्व के बड़े भाग पर अपना नियंत्राण कर लिया। पैंडयूलम 1960 और 1970 के दशकों के राज्य स्वामित्व मॉडली से 1980 और 1990 के दशकों के न्यूनतमवादी राज्य की ओर झूल रहा था।

सरकार की अस्वृकृति ने राज्य बनाम बाजार की

बहस तेज कर दी तथा राज्य की क्षमता में आधरभूत संकट उत्पन्न होना शुरू हुआ। कुछ देशों में संकट के कारण सीधे राज्यों का ही विघटन हुआ। अन्य देशों में राज्य की क्षमता में क्षरण के पफलस्वरूप गैर सरकारी और समुदाय आधरित संगठन नागरिक समाज के व्यापक रूप से स्थान ग्रहण करने का प्रयास किया। बाजार के उनके अंगीकरण में और राज्य सक्रियतावाद की अस्वींकृति से बहुत से लोगों का बहुत आश्चर्य हुआ कि क्या बाजार एवं नागरिक समाज अंततः राज्य को उखाड़ सकेगें।

<u>नीति निर्माण एवं भारत</u>:–

नीति का निर्माण या निर्धरण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। नीति कोई स्थिर वस्तु नहीं है और न ही यह स्थायी होती हैं गतिशीलता और लचीलापन नीतियों का प्राण तत्व है। परिस्थितियों के अनुरूप नीतियों में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। इस तरह नीति निर्धरण एक निरंतर चलने वाला दायित्व है। अर्थात् एक बार नीति का निर्धरण करना ही कापफी नहीं बल्कि समय–समय पर आने वाले नए प्रश्नों और समस्याओं के आलोक में नीति का पुनर्निधरण भी उतना ही आवश्यक है।

जिस वातावरण में नीति का जन्म होता है उसको अलग करके उसके निर्णय की प्रक्रिया को ठीक प्रकार से नहीं समझा जा सकता। नीति कार्रवाई की माँगे वातावरण में उत्पन्न होती है और ये राजनीतिक प(ति में संचालित हो जाती हो साथ ही नीति निर्माण जो कुछ कर सकते है वातावरण उस पर सीमा का निर्धरण करके बाधएँ खड़ी करता है। वातावरण में प्राकृतिक संसाध्न, जलवायु, भौगोलिक विशेषताएँ, जनसंख्या और स्थानीय स्थिति जैसे कारकों पर राजनीतिक संस्कृति, सामाजिक रचना और आर्थिक प(ति भी सम्मिलित होती है।

लोक नीतियाँ राष्ट्र के सभी नागरिकों के जीवन से संबं(होती है, उनके जीवन के लगभग हर एक पक्ष को छूती है, इसलिए नीति–निर्माण की प्रक्रिया में समूची राजनीतिक व्यवस्था शामिल रहती है। इसीलिए नीति निर्माण एक जटिल प्रक्रिया भी है इस प्रक्रिया में सरकार के विभिन्न अंगों के साथ–साथ गैर सरकारी माध्यमों की भी भूमिका होती है। भारत एक संघीय राज्य है, अतः नीति–निर्माण प्रक्रिया भी संघीय व्यवस्था के अनुरूप है। भारतीय संघीय व्यवस्था की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ है। इसका विकास एकात्मक व्यवस्था से हुआ था और आज भी इसका झुकाव एकात्मक व्यवस्था की ओर है। लेकिन भारत में विभिन्न एजेंसी बनाए गए जो अपनी–अपनी भूमिका निभते है इनमें से कुछ अभिकरण निम्न है–

1.संविधन :– भारत में किसी भी नीति की पहली शर्त यह है कि वह किसी भी हालत में संविधन की मूल भावनाओं के विरु(न हो। संविधन की प्रस्तावना और राज्य के नीति–निर्देशक तत्व विभिन्न नितियों के प्रेरणा स्रोत होते हैं। इस तरह नीति–निर्माण में संवधिन की व्यापक भूमिका है। एक तरपफ तो वह नीतियों के गलत, सही के निर्धरण का मानदंड है तो दूसरी तरपफ वह नीतियों के लिए मार्गदर्शन की भूमिका निभाता है। किसी भी नीति को न्यायालय में इस आधर पर चुनौती दी जा सकती है कि वह संविधन सम्मत नहीं है या संविधन द्वारा घोषित लक्ष्यों और उद्देश्यों के विपरीत है। एकतरपफ जहां नीतियों का मूल स्रोत संविधन है वहीं कतिपय मामलों में नीतियां भी संविधन को प्रभावित करती हैं। ऐसा इसलिए संभव हो पाता है कि हमारा संविधन एक जड़ संविधन नहीं है। संविधन निर्माताओं ने इसमें युगानुकूल पर्याप्त परिवर्तन की कापफी गुंजाइश छोड़ रखी है।

2.संसद :– भारत में महत्वपूर्ण नीतियां संसद द्वारा स्वीकृत होती हैं। बड़े नीतिगत पफैसलों में संसद की सहमति आवश्यक है। बजट पास करने का अध्किार संसद को ही है जो प्रत्येक नीति का केन्द्रीय स्रोत है। भारतीय संसद, वजट, अनुदान, पूरक मांगें, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा, प्रश्न काल आदि के माध्यम से नीति निर्माण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी करती है। भारत में नीति निर्माण के काम में संसद की भूमिका के महत्वपूर्ण होने का एक और बड़ा कारण है। भारत में वैसे तो संघात्मक प्रणाली को अपनाया गया है लेकिन व्यवहार में यहां एक मजबूत केन्द्र की स्थापना की गई है। केन्द्र की तुलना में राज्यों के अध्किार एकदम न्यून हैं। ऐसे में, भूमिका संसद की महत्वपूर्ण भूमिका हो जाती है।

3.मंत्रिमंडल :– भारत के लोकनीति निर्माण की केंद्रीय धुरी मंत्रिमंडल है। समस्त नीतिगत निर्णय मंत्रिमंडल द्वारा ही लिए जाते हैं। मंत्रिमंडल नीति–निर्धरण प्रक्रिया में सबसे केन्द्रीय और शक्तिशाली इकाई है। प्रत्येक विभाग या मंत्रालय की नीति का निर्धरण उस विभाग का मंत्री ही करता है। भारत में नीति निर्माण के क्षेत्रा में मंत्रिमंडल की भूमिका दिनों–दिन कापफी महत्वपूर्ण होती जा रही है। धीरे–धीरे मंत्रिमंडल नीति निर्माण की सर्वोच्च संस्था बनती जा रही है। आज व्यवहार में मंत्रिमंडल है। कोई भी नीति संसद में विचारार्थ तभी प्रस्तुत की जाती है जब उस पर पहले मंत्रिमंडल में सर्वसहमति बन जाती हैं अगर किसी मामले पर मंत्रिमंडल में मतभेद हो तो उसे संसद में प्रस्तुत ही नहीं किया जाता है। कहने का आशया यह है कि संसद में प्रस्तुत किसी भी सरकारी विधेयक के लिए मंत्रिमंडलीय सहमति अपेक्षित है।

4. **योजना आयोगः–** भारत में नीति निर्माण संबंधी प्रक्रिया में योजना आयोग भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है हाँलाकि, यह मुख्यतः एक परामर्शदाता निकाय है। वर्तमान समय में इसी भूमिका कापफी बढ़ गई है। खासकर, राज्यों को इसके सुझावों की अवहेलना करना कापफी कठिन हो गया है। योजना आयोग देश के विकास के लिए अपना पांच वर्ष का ‘‘रोडमैप’’ जारी करता है। इसे पंचवर्षीय योजना के रूप में पहचाना जाता है। सोवियत मॉडल से प्रभावित यह पंचवर्षीय योजना नेहरू की देन है। योजना आयोग का अध्या प्रधनमंत्री होता हैं इसके सदस्य देश के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। योजना आयोग उन क्षेत्रों को चिर्हित करता है। जिन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है और उसी के अनुसार ध्न का आबंटन भी होता है। योजना आयोग द्वारा चलाई जा रही नीतियों की हर पांच साल के बाद समीक्षा की जाती है। और तत्पश्चात् आगे की पांच साल की रूपरेखा खींची जाती है। पिछले अनुभवों और कार्यक्रमों के प्रभाव का विश्लेषण कर लक्ष्यों में भी अपेक्षित परिवर्तन किया जाता है।

5. **राष्ट्रीय विकास परिषदः–** इसमें प्रधनमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं। विभिन्न योजनाओं विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में राष्ट्रीय विकास परिषद की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसमें विभिन्न राज्यों को अपना पक्ष रखने का मौका मिलता है। चूंकि राज्यों के पास आर्थिक संसाध्न एकदम सीमित हैं इसलिए विभिन्न नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राज्यों को केन्द्र की इन एजेंसियों पर अध्कि निर्भर रहना पड़ता है। राज्यों की इस मजदूरी का पफायदा भी कई बार ये एजेंसियों पर अध्कि निर्भर रहना पड़ता है। राज्यों की इस मजबूरी का पफायदा भी कई बार ये एजेंसियां उठाती है और कई तरह की नीतियों को मानने के लिए राज्यों को बाध्य करती हैं। कई बार इन एजेंसियों द्वारा राज्यों के ध्न आबंटन में भेद–भाव का भी आरोप लगता है। जो पार्टी सत्तारूढ़ होती है वह अपनी राज्य सरकारों को अनुदान देने में उदारता बरतती है वहीं विपक्षी पार्टी की राज्य सरकारों के अनुदान में कटौती भी कर देती है।

6. **न्यायपालिका :–** भारत में न्यायपालिका भी नीति निर्माण प्रक्रिया में अपना योगदान देती है। विभिन्न मसलों पर उसके पफैसले और सुझाव लोकनीतियों को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। सरकार कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय से सलाह मांगती है। ये सलाह कापफी हद तक नीतियों की मार्गदर्शक होती हैं। न्यायालय के पफैसले कई बार नीति निर्माण के आधर पर बनते हैं। कई बार न्यायालय के पफैसले के पक्ष में नीतियां बनती हैं तो कई बार न्यायालय के पफैसले को निष्प्रभावी बनाने के लिए भी नीतियां बनती हैं। पफैसले को निरस्त करने के लिए संविधन में संशोध्न किया जाता है। **‘‘शाहबानों मामला’’** इस तरह के संशोध्न का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं लालांकि संविधन में हुए संशोध्न को भी वैध् या अवैध् ठहराने का अंतिम अध्किार सर्वोच्च न्यायालय के पास ही है।

7. **दबाव समूह :–** भारत में दबाव समूह नीतियों को कापफी हद तक प्रभावित करते हैं। दबाव समूह सामान्य हित के आधर पर संगठित व्यक्तियों का समूह होता हैं ये समूह नीतियों को अनुकूल बनाने के लिए हर संभव कोशिश करते हैं। ट्रेड यूनियन, छात्रा संघ, महिला संगठन, अल्पसंख्यक मोर्चा आदि ऐसे ही दबाव समूह हैं जो नीतियों को प्रभावित करते हैं। भारत में जिस दबाव समूह की राजनीतिक और आर्थिक ताकत जितनी अध्कि होती है वह नीति निर्माण को उसी अनुपात में प्रभावित करता हैं अर्थात् किसी समूह विशेष की नीति निर्माण को प्रभावित करने की ताकत इस बात पर

निर्भर करती है कि सत्ता में उसकी कितनी हस्तक्षेपकारी भूमिका है। सत्ता में हस्तक्षेपकारी भूमिका के आधर पर ही कमजोर और ताकतवर दबाव समूहों की पहचान की जाती हैं आर्थिक और राजनीतिक रूप से लाकतवर दबाव समूह की नीतियों को बहुत अध्कि प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। छोटे–छोटे कमजोर दबाव समूहों की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती। उनकी आवाज प्रायः अनसुनी कर दी जाती है।

8. **राजननीतिक दलः–** राजनीतिक दल चुनावी घोषणा पत्रा द्वारा अपनी नीतियों को प्रस्तावित करते हैं। सत्ता प्राप्त करने के बाद वे मूलतः अपनी नीतियों को ही आगे बढ़ाते हैं। इस तरह सरकार की नीति बहुलांश में सत्ताधरी राजनीतिक दल की ही नीति होती है। जो दल विपक्ष में होते हैं वे भी नीतियों को कापफी हद तक प्रभावित करते हैं। कई बार सरकार को विपक्षी दलों के भारी विरोध् और दबाव के कारण भी प्रस्तावित नीतियों को वापस लेना पड़ता है। कई बार किसी मुद्दे को कोई खास राजनीतिक दल उठाता है लेकिन कालांतर में वह सबका मुद्दा बन जाता है और सभी उसकी ओर ध्यान देना शुरू कर देते हैं। विचारधरा आधरित राजनीतिक दलों की खास नीतियां होती हैं जिसको लेकर वे हमेशा संघर्षरत और प्रयासरत रहते हैं।

9.**परामर्शदायी समितियां :–** विभिन्न परामर्शदायी समितियां भी नीति निर्माण को प्रभावित करती हैं। इसमें सरकार की कुछ स्थायी समितियों के अलावा उन समितियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है जो समय–समय पर सरकार द्वारा गठित की जाती हैं। ये समितियां अपने सुझाव और सिपफारिशें सरकार को सौंपती हैं जो संब(मसलों पर नीति निर्माण के लिए कापफी कारगर होता है।

10.**मीडियाः–** मीडिया जनमत को प्रभावित करता है। नीतियों के पक्ष या विपक्ष में जनमत के निर्माण में मीडिया प्रभावशाली भूमिका निभाता है। मीडिया वर्तमान में चल रही विभिन्न नीतियों पर न सिपर्फ स्वतंत्रा राय देता है बल्कि आवश्यक नीतियों के लिए सुझाव भी देता है। मीडिया विभिन्न पक्षों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर जनपक्षध्र नीति के लिए दबाव बनाने का काम करता है। भारत में मीडिया की भूमिका लगातार बढ़ती जा रही है। आज मीडिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नीतियों पर निगरानी का काम भी कर रहा है। वह नीतियों की खूबियों और खामियों को बखूबी उजागर कर रहा है। ‘आर टी आई’ ;त्र्प्द्ध और मनरेगा जैसे व्यापक नीतिगत निर्णयों के उचित ढंग से क्रियान्वित नहीं होने की तमाम खबरें मीडिया के माध्यम से सामने आ रही हैं। अगर किसी नीति का निर्माण किसी अनैतिक दबाव में हो रहा है या हुआ है तो मीडिया उसका भंड़ापफोड़ कर रहा है। नीतियों के निर्माण में आज मीडिया की राय अहम् मानी जा रही है। ऐसी कई नीतियां हैं, जिसमें, मीडिया में हो रही आलोचना के दबाव में अपेक्षित परिवर्तन करने पड़े हैं। मीडिया जहां सरकार की गलत नीतियों की खिंचाई करता है वही उसकी अच्छी नीतियों का जोरदार समर्थन भी करता है। आज मीडिया विभिन्न तरह के दबाव समूहों को न सिपर्फ मंच प्रदान करता है बल्कि वह स्वयं एक शक्तिशाली दबाव समूह के रूप में प्रकट हुआ है जो नीतियों को प्रभावित करने में निर्णायक भूमिका निभा रहा है।

निष्कर्ष :–

भारतीय समाज अध्किांशतः एक पिछड़ा समाज है। गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बेरोजगारी, अशिक्षा, बीमारी, सामाजिक, आर्थिक असमानता, सांप्रदायिकता आदि विकराल समस्याओं से हमारा देश बुरी तरह जुझ रहा है। इन बुराईयों का सामना और समाधन लोकनीति के माध्यम से ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से भारत जैसे विकासशील देश में राज्य की भूमिका केवल कानून एवं व्यवस्था देखने तक सीमित नहीं हो सकती।

विकासशील देशों में राजनीति की वही भूमिका नहीं हो सकती जो कि विकसित देशों में है। विकासशील देशों में राजनीति की कहीं व्यापक और महती भूमिका है। भारत जैसे विकासशील देश में राजनीति सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का सबसे शक्तिशाली माध्यम है। दरअसल राजनीति का क्रियात्मक रूप लोकनीति के माध्यम से ही परिलक्षित होता है। जिस तरह की राजनीतिक ताकतें सत्ता में रहेंगी, लोक नीति का स्वरूप भी उसी तरह का होगा और जिस तरह की लोकनीति होगी उसी तरह हमारी समस्याओं का स्वरूप होगा तथा उसी के अनुरूप बहुसंख्याक जनता की दशा होगी।

लोकनीति की हमेशा से दोहरी भूमिका रही है और आज भी है। लोकनीति जहाँ सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन को ला सकती है वहीं वह इन परिवर्तनों को रोक भी सकती है। इसलिए लोकनीति का निर्धरण कापफी सोच समझकर किया जाना चाहिए। सबसे बड़ी बात है कि लोकनीति का निर्धरण तो एक सरकार करती है लेकिन उसका असर आने वाली कई पीढ़ियों पर पड़ता है। नेहरू युग की कई नीतियों का प्रभाव आज भी कायम है। उस दौर की नीतियों के अच्छे और बुरे परिणामों को हम आज भी साक्षी हो सकते हैं। इस संदर्भ में यह कहना कोई अव्युक्ति नहीं होगी कि स्वातंत्रायोत्तर भारत का इतिहास बहुत हद तक लोकनीतियों का ही इतिहास है। स्वातंत्राता के बाद भारत की राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज आदि को समझने के लिए लोकनीतियों का अध्ययन आवश्यक है।

आज दुर्भाग्य यह है कि छः दशक बाद भी लोकनीति की समस्त प्रक्रिया से समाज का बहुत लाभ आज भी नीति निर्माण प्रक्रिया में उन वंचित तबकों के लिए कोई जगह नहीं है। यह विंडबना ही है कि जो तबका नीतियों से सबसे अध्कि प्रभावित होता है और जिसके लिए अध्किांश नीतियों बनाई जाती है, वही इस नीति निर्माण प्रक्रिया से बाहर है। देश की बहुसंख्यक आबादी को दर किनार कर बनाई गई नीति कभी कारगार नहीं हो सकती। अगर नीतियों को कारगर और प्रभावी बनाना है तो इसके लिए नीति निर्माताओं को इस प्रक्रिया में बहुसंख्यक जनता की भागीरी सुनिश्चित करनी होगी।

संदर्भ –

1. Aberbach, J.D., R.D. Putnam, and B .A. Rockman, 1981, *Bureaucrats and Politicians in Western Europe* Harvard University Press, Cambridge.
2. Anderson, James E., *1975, Public Policy-Making,* Praeger, New York.
3. Chandler, Ralph C. and Jack C. Plano, 1982, *The Public Administration Dictionary,* John Wiley, New York.
4. Cobbe, R.W., and C.D. Elder, 1972, *Participation in American Politics: The Dynamics of Agenda-Building,* Johns Hopkins University Press, Baltimore.
5. Dayal, Ishwar, *"Organization for policy Formulation",* Kuldeep Mathur, (Ed.) 1996, *Development Policy and Adrninistration*, Sage Publications, New DeIhi.
6. Dror, Y, 1968, *Public Policy Making Re-examined,* Scranton, Pennsylvania.
7. Dror Yehezkel, 1971, *Ventures in Policy Sciences : Concepts and Application,* American Elsevier, New York.
8. Dye, Thomas R., 1978, *Understanding Public Policy*, Prentice Hall, Englewood Cliffs.